।। तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

पुनरुत्थान कार्य अने विचार सन्देश

पुनरुत्थान ट्रस्ट के विचार एवं कार्य के प्रसार हेतु मासिक पत्रिका मूल्य रु. ३/–

प्रकाशन स्थल : पुनरुत्थान ट्रस्ट 'ज्ञानम्' ९ बी, आनन्दपार्क, बलियाकाका मार्ग, जूना ढोर बजार, कांकरिया, अहमदाबाद – ३८० ०२८

वर्ष : १४ • अंक : ६ • पौष, शक संवत् १९४४ • युगाब्द ५१२४ • जनवरी २०२३

सप्रेम नमस्कार ।

दो वर्ष पूर्व भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की । इसके अन्तर्गत भारतीय ज्ञान–व्यवस्था को भी महत्त्वपूर्ण आयाम के रूप में प्रतिष्ठा दी । बीते हुए दो वर्षों में शासन की यंत्रणा पाठ्यक्रम निर्माण कर रही है, संदर्भ सामग्री और पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी कर रही है । २०२३ में भारत के विद्यालयों में वह सब लागू भी होने लगेगा । इस संबंध में कुछ बातें विचारणीय हैं ।

१. राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक आयाम भारतीय ज्ञानव्यवस्था न होकर भारतीय ज्ञान व्यवस्था का एक अंग सरकार की राष्ट्रीय शिक्षानीति होनी चाहिये । अभी की व्यवस्था टहनी को वृक्ष का अंग बनाने के स्थान पर वृक्ष को ही टहनी का एक अंग बताने जैसी है ।

२. इस का आवश्यक संकेत यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में एक मूल व्यवस्थातंत्र में ही बदलाव की आवश्यकता है । अंग्रेजी में इसे पेरेडीम शिफ्ट कहते हैं । इस बदलाव की ओर समस्त विद्वत् क्षेत्र में ध्यान देना चाहिये ।

३. अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अथकारी शिक्षा आवश्यक है परंतु अर्थकेन्द्री शिक्षा नहीं । अर्थकारी शिक्षा से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को धन कमाने के लायक तो बनाना चाहिये, परंतु धन कमाने के कार्य को ही जीवन में केन्द्रवर्ती स्थान नहीं देना चाहिये । व्यक्ति का हो या समाज का, जीवन धर्मकेन्द्री होना चाहिये और धन उसका एक अंग होना चाहिये । वर्तमान शिक्षाव्यवस्था में अर्थ केन्द्रस्थान पर है और धर्म कहीं है ही नहीं ।

यह फिर से टहनी को वृक्ष मानने और वृक्ष का तो विचार ही नहीं करने जैसा है । वृक्ष का विचार ही नहीं किया तो टहनी भी कैसे बचेगी और फलफूल से युक्त होने वाली है ?

राष्ट्रीय शिक्षानीति में धर्म का विचार ही नहीं किया गया है ।

शिक्षा को धर्मानुसारिणी नहीं बनाया तो वह राष्ट्रीय भी नहीं हो सकती ।

४. धर्मानुसारी, धर्मकेन्द्री व्यवस्था में अर्थकरी शिक्षा का विचार करने पर धर्म और अर्थ दोनों प्रतिष्ठित हो सकते हैं क्योंकि दोनों परस्पर रक्षा करते हैं । अर्थ से पोषित धर्म प्रजा को धारण करने में सक्षम बनता है और धर्म के द्वारा नियमन में रखा गया अर्थ विनाशक बनने से बचता है ।

५. शिक्षा नीति अर्थकरी तो बनाई गई है परंतु पढनेवाले व्यक्ति का शरीर–स्वास्थ्य और मनोस्वास्थ्य कैसे बचेगा, बनेगा और बढेगा इसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है । शरीर और मन स्वस्थ नहीं होंगे तो बुद्धि के सामर्थ्य का भी विकास नहीं होगा और दूसरी ओर उत्तेजना, विफलता और हिंसा के दूषण बढेंगे । शरीर–स्वास्थ्य को केवल औषधी के भरोसे नहीं छोडा जा सकता ।

शरीर, मन और बुद्धि एक साथ विकसित होते हैं, तीनों का एकदूसरे पर प्रभाव होता है । यह बात समझ में ही नहीं आई है । एक बार फिर वृक्ष टहनी न्याय उल्टा हो गया है । शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा के प्रकाश में काम करने चाहिये यह मूल बात अभी चर्चा में ही नहीं आई है, क्योंकि आत्मा का विचार सरकारी दफ्तर में और विश्वविद्यालय में होना वर्जित है, उसे मठों में, मंदिरों में और आश्रमों में सीमित कर दिया गया है ।

आत्मनिष्ठ जीवनविचार को शासनव्यवस्था में और शिक्षाव्यवस्था में आधार नहीं बनाया तो शिक्षा राष्ट्रीय नहीं हो सकती ।

६. प्रश्न यह है कि ऐसा विचार कहाँ हो सकता है, कौन यह विचार कर सकता है । इस विषय का दायित्व किसका है यह स्पष्ट नहीं होता है । वास्तव में यह विचार विद्वान धर्माचार्यों को करना चाहिये ।

वास्तव में धर्माचार्यों को राष्ट्रजीवन के बारे में ही विचार करना चाहिये, व्यवस्था देनी चाहिये, नीतिनिर्देश करना चाहिये, ऐसा होगा तब वृक्ष का और वृक्ष के अंग रूप में टहनी का विचार होगा ।

इति शुभम् ।

– सम्पादक

विचारणीय

जगत गतिमान है । जगत कार्यप्रणव है । जगत परिवर्तनशील है । इन सभी बातों के लिये दो घटकों की आवश्यकता है । एक है साधन और दूसरा है ऊर्जा । ऊर्जा के बिना साधन गति नहीं कर सतका, कार्य नहीं कर सकता, परिवर्तन घटित नहीं हो सकता ।

विश्व में दो प्रकार की ऊर्जा है । एक है प्राण ऊर्जा और दूसरी है भौतिक ऊर्जा । विद्युत, चुंबक, गुरुत्वाकर्षण भौतिक ऊर्जा है । प्राण हम जानते ही है । भौतिक ऊर्जा का स्रोत सूर्य है परंतु प्राण सूर्य का भी स्रोत है । भौतिक ऊर्जा दो प्रकार की है । एक है प्राकृतिक और दूसरी है मानवनिर्मित तंत्रज्ञान । प्राकृतिक ऊर्जा को उत्पन्न करने की और कार्यप्रवण करने की प्रणाली है ।

विचारणीय बात यह है कि भारत में किसी भी प्रकार का कार्य प्राणिक ऊर्जा प्राण ऊर्जा से ही होता आया है । उत्पादित प्राकृतिक ऊर्जा से नहीं । क्यों ? इस का क्या रहस्य है ?

शिक्षा का अत्यन्त प्रभावी केन्द्र कुटुम्ब

शिक्षा व संस्कार अगल नहीं है

शिक्षा विषयक गलत धारणाओं के हम कुछ इतने आदी हो गये हैं कि उससे कितना नुकसान होता है इसकी कोई कल्पना ही हम नहीं कर सकते। ऐसी ही एक गलत धारणा यह बन गई है कि शिक्षा विद्यालय में जाकर ही होती है। धीरे धीरे हम यह कहने लगते हैं कि जो विद्यालय में नहीं होती वह शिक्षा ही नहीं है। इसका ही परिणाम है कि हम लोग घर का महत्त्व मानकर उसके सन्दर्भ में जब बात होती है तब यह नहीं कहते हैं कि घर में शिक्षा होती है।हम कहते हैं कि घर में संस्कार होते हैं। इसके साथ ही दूसरी गलत धारणा यह बनी है कि शिक्षा और संस्कार अलग बातें हैं। फिर हम कहते हैं कि शिक्षा संस्कारहीन नहीं होनी चाहिए। हम आज की स्थिति को ध्यान में रखकर ही ऐसा कहते हैं यह सत्य है परन्तु इससे सिद्ध यह होता है कि शिक्षा और संस्कार अलग हैं।

अत: पहला तो गृहीत यह है कि शिक्षा और संस्कार अलग नहीं हैं। संस्कार को हम सद्गुण और सदाचार के रूप में समझते हैं। सद्गुण और सदाचार वास्तव में धर्म शिक्षा है। भारत में शिक्षा वही है जो धर्म सिखाती है। अर्थकरी शिक्षा को वास्तव में शिक्षा नहीं अपितु कौशल कहते हैं। धर्मकरी शिक्षा को ही शिक्षा कहते हैं।

इस दृष्टि से देखें तो शिक्षा विद्यालय में तो बहुत ही कम होती है। शिक्षा की शुरुआत घर में होती है, जन्म के भी पूर्व से होती है और विद्यालयीन शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद भी चलती है।

हम यह भी कह सकते हैं कि प्राचीन समय में, अथवा तो यह कहें कि भारत में गुरुकुल में जाकर शास्त्रों के अध्ययन को ही शिक्षा कहा जाता था, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, व्यापार आदि सीखने को शिक्षा नहीं कहा जाता था। यह सब सीखने के लिए गुरुकुल में जाने की आवश्यकता नहीं थी। वह घर में और घर के आसपास मिलने वाले मार्गदर्शन से ही मिल जाती थी। उसके लिए न तो कोई तंत्र आवश्यक था न पैसा। अर्थार्जन अथवा अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो घर में और आसपास से ही हो जाती थी।

घर भी शिक्षा केन्द्र है

कुछ भी हो जीवनविकास के लिए यदि शिक्षा है तो वह केवल विद्यालय में नहीं अपितु घर में प्राप्त होती थी।

घर में शिक्षा के पहलू इस प्रकार कहे जा सकते हैं...

- बालक को जन्म देना पतिपत्नी का परम कर्तव्य है। वास्तव में विवाह किया ही इसलिए जाता है कि हम पितृऋण से उऋण हो सकें। पितृऋण से उऋण होना सांस्कृतिक कर्तव्य है क्योंकि बालक को जन्म देने से ही नई पीढ़ी निर्माण होती है और नई पीढ़ी को पूर्व पीढ़ी द्वारा परिवारगत जो भी सांस्कृतिक विरासत होती है वह नई पीढ़ी को हस्तान्तरित की जा सकती है। यदि नई पीढ़ी जन्मी ही नहीं तो परम्परा खंडित होती है। परम्परा खंडित होने का निमित्त बनना बहुत बड़ा सामाजिक सांस्कृतिक अपराध है। इसे ही भारत में पाप माना जाता था। आज हम व्यक्तिकेन्द्री जीवनदृष्टि से प्रभावित हो गये हैं इसलिए सामाजिक सांस्कृतिक दायित्व को महत्त्वपूर्ण मानते नहीं हैं। परन्तु हमें स्मरण में रखना चाहिए कि भारत परम्परा निर्वहण के कारण ही चिरंजीवी बना है।
- घर सांस्कृतिक परम्परा निभाने का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है और बालक परम्परा निर्वहण का महत्त्वपूर्ण माध्यम। इस दृष्टि से बालक की शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। भारत के मनीषियों ने जाना कि कोई भी व्यक्ति अकेले में जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। वह अपने साथ अपने पूर्वजन्म के संस्कार लेकर आता है। वे उसके चरित्र में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। साथ ही उसे माता की पाँच और पिता की चौदह पीढ़ियों के संस्कार मिलते हैं। तीसरे, वह जिस संस्कृति में जन्मा है उस संस्कृति के संस्कार भी उसके चरित्र का हिस्सा होते हैं। वह जिस वातावरण में जन्मता है उस वातावरण के संस्कार भी उस पर होते हैं। ये सब उसकी शिक्षा के अंग हैं। बालक का पूर्व जन्म और अपनी पाँच और चौदह पीढ़ीयाँ तो हमारे हाथ में नहीं हैं परन्तु मातापिता स्वयं को तो अच्छे बालक को जन्म देने के लिये समर्थ बना सकते हैं। अत: मातापिता को इस लायक बनाने का हर प्रकार से प्रयास किया जाता था। भारत में अधिजननशास्त्र का बहुत विकास हुआ है। यह शास्त्र घर में जन्म पूर्व से ही बालक के चरित्रनिर्माण के लिये क्या करना और क्या नहीं करना इसका ही शास्त्र है।
- मनुष्य के जीवन को सांस्कृतिक दृष्टि से नियमित और व्यवस्थित करने हेतु भारतीय समाजचिंतकों ने सोलह संस्कारों की व्यवस्था दी है। इन सोलह संस्कारों में से नौ संस्कार व्यक्ति की आयु के प्रथम पाँच वर्षों में ही हो जाते हैं। ये संस्कार शारीरिक और मानसिक विकास की दृष्टि से ही होते हैं। खूबी की बात यह है कि गर्भाधान संस्कार तो बालक का आगमन अभी माता के गर्भाशय में हुआ भी नहीं है तब होते हैं। गर्भावस्था में माता के माध्यम से बालक का चरित्रनिर्माण बहुत सावधानी पूर्वक किया जाता है। बालक का जन्म, जन्म के बाद की उसकी सुरक्षा, उसका संगोपन, उसके संस्कार आदि का भी विस्तृत विधान हमारे शास्त्रों में निरूपित है और हमारी परम्परा में जीवित है। केवल उसे व्यवस्थित करने की आवाश्यकता है।
- घर में जो शिक्षा मिलती है वह घर की जीवनशैली की और

कुलपरम्परा कि होती है। वह बहुत छोटी अवस्था से इन सबके संस्कार प्राप्त करता है। बालक भाषा सीखता है और अभिव्यक्ति की क्षमता भी सीखता है। वह आदतें भी सीखता है और अनेक प्रकार के कौशल भी। वह जीवनमूल्य भी सीखता है और शैली भी ग्रहण करता है। वह अनुकरण से भी सीखता है और प्रेरणा से भी सीखता है। वह घर के सारे कामों को साथ साथ करके भी सीखता है और अपनी बुद्धि से भी सीखता है। वह निरीक्षण से भी सीखता है और परीक्षण से भी सीखता है। वह स्वयं प्रेरणा से और स्वयं पुरुषार्थ से सीखता है। वह मातापिता और बड़ों के संरक्षण में अनेक प्रकार से लाड़ प्यार पाकर सीखता है। वह आनन्द से सीखता है, उत्साह से सीखता है। सीखना उसके लिये बोज नहीं है, न घर के अन्य लोगों के लिये। आज हम शिक्षक विद्यार्थी अनुपात को लेकर परेशान हैं। हम कहते हैं कि एक शिक्षक तीस, चालीस बच्चों को एक साथ पढ़ा नहीं सकता। परन्तु व्यावहारिक कारणों से हम यह अनुपात कम नहीं कर सकते। परन्तु घर में तो एक विद्यार्थी और दो, तीन, चार या उससे भी अधिक शिक्षक होते हैं। वे सब बिना वेतन के होते हैं। सीखने के लिये न तो गणवेश चाहिए न बस्ता, न वाहन चाहिए न शुल्क, न समयसारिणी है न गृहकार्य। साहाजिक ढंग से, आनन्द से, प्रेम से प्रभावी ढंग से शिक्षा होती है।

- कुटुम्ब में शिक्षा होती है इससे एक लाभ यह होता है कि शिक्षा जीवन का एक स्वाभाविक अंग बन जाती है। सीखने का सबसे अच्छा तरीका साथ रहना, साथ काम करना और साथ जीना है। इसी तथ्य के आधार पर ही गुरुकुल संकल्पना का विकास हुआ है जिसमें गुरुगृहवास अनिवार्य और स्वाभाविक माना गया है। यह तथ्य न समझकर हम कहते हैं कि यातायात के साधन नहीं थे इसलिए गुरुकुल में शिक्षा के साथ आवास और भोजन की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी। आज भी छात्रावास सहित के अथवा आवासी विद्यालय इसी तथ्य को स्वीकार कर ही चलते हैं कि पढ़ाई के स्थान पर आवास और भोजन की व्यवस्था नहीं होती है इसलिए वह कर देने से विद्यार्थियों को सुविधा रहेगी। जब शिक्षा जीवन का अंग बनकर चलती है तब उसका अलग से कोई शास्त्र बनाने की आवश्यकता नहीं होती। इस कारण से ही कदाचित आज के जैसा भारत में अध्यापनशास्त्र नहीं रचा गया, हाँ, संगोपनशास्त्र अवश्य रचा गया।
- कुटुम्ब में शिक्षा संभव होने के लिये घर में संस्कारक्षम वातावरण होना चाहिए, बड़ों का चरित्र प्रेरणादायी होना चाहिए। बालक का चरित्र ठीक नहीं है तो मातापिता को दोष दिया जाता है और बालक के यश का श्रेय मातापिता को दिया जाता है। ऐसा करके मातापिता की ज़िम्मेदारी का भी स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य की और शिष्य अपने गुरु की कीर्ति से जाना जाता है।
- भारतीय व्यवस्था में अर्थार्जन कुटुंबजीवन का ही हिस्सा था, अत: अर्थार्जन के लिये विद्यालय में पढ़ने के लिये जाने का कोई प्रयोजन नहीं था। जिस प्रकार सब मिलकर घर के और सारे काम करते थे उसी प्रकार सब मिलकर अर्थार्जन भी कर लेते थे। कुटुम्ब का व्यवसाय भी निश्चित होता था। अत: व्यवसाय सीखना अपने आप हो जाता था। अन्य कोई व्यवसाय सीखना है तो सिखाने वाले के पास जाना होता था और उसके घर रहकर सीखा जाता था। घर से बाहर जाकर सीखना भी व्यक्तिगत विषय ही था।
- अर्थार्जन को लेकर नहीं तो घर में रहने को केन्द्र बनाकर जीवन की रचना होती थी और अर्थार्जन साथ रहने के भाग स्वरूप ही विचार में लिया जाता था। व्यक्तिगत करियर या व्यक्तिगत अर्थार्जन यह विषय ही नहीं था। अर्थार्जन अपने आपमें सबसे प्रमुख विषय नहीं था। जीवन जीना प्रमुख विषय था और निर्वाह के लिये सामग्री चाहिए इसलिए अर्थार्जन का विचार किया जाता था। व्यवसाय लोगों की आवश्यकता पूर्ण करने के लिये किए जाते थे। आर्थिक आवश्यकता नहीं है इस कारण से कोई अपना व्यवसाय छोड़ नहीं सकता था। जिस प्रकार स्वयं को उपवास है और भोजन नहीं चाहिए इसलिए घर में कोई भोजन बनाने को मना नहीं करता है उसी प्रकार स्वयं को नहीं चाहिए इसलिए कोई व्यवसाय छोड़ नहीं सकता। कुटुम्ब की इस रचना की शिक्षा कुटुम्ब में ही प्राप्त होती है।
- जिस प्रकार अर्थार्जन घर का विषय है उसी प्रकार चरित्रनिर्माण भी घर का ही विषय है। आज हम बलात्कार की घटनाओं के बारे में बहुत सुनते हैं। सामाजिक सुरक्षा भी नहीं है। सामाजिक दायित्वबोध का भी अभाव दिखाई देता है। इन सब बातों की शिक्षा घर में होती है। पराई स्त्री को माता और बहन मानना और उसकी ओर कुदृष्टि से देखना नहीं यह सीख घर में मिलती है। जो अपना नहीं है वह लेना नहीं चाहे कोई न भी देखता हो यह घर में सिखाया जाता है। घर की गृहिणी पति को और बड़े बुजुर्ग छोटों को अनीति के रास्ते पर जाने से रोकते थे। अतिथिसत्कार के निमित्त से व्यवहारदक्षता घर में ही सीखी जाती थी। सामाजिक उत्सवों में सहभागिता और उनके आयोजन में हिस्सेदारी से सामाजिक शिक्षा होती थी।
- अपनों के लिये त्याग करना भी वे बड़ों से ही सीखते हैं। नैतिक शिक्षा या मूल्यों की शिक्षा अलग से देनी नहीं पड़ती।
- दान करना, व्रतपालन करना, उत्सवों का आयोजन सीखना, विवाह जैसे समारोहों का आयोजन करना, घर में ही सीखा जाता है। इष्टदेवता और कुलदेवता की पूजा, धार्मिक समारोह, मन्त्र, स्तोत्र, धार्मिक ग्रंथों का पठन आदि सब घर में दैनंदिन व्यवहार का भाग बनकर सीखे जाते हैं। सेवा और परिचर्या, वस्तुयें परखने की कुशलता, लोगों को भी परखने की कुशलता घर में ही सीखी जाती है।
- घर में जो सबसे बड़ी बात सीखी जाती है वह है गृहस्थधर्म। घर सांस्कृतिक परम्परा बनाये रखने का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। उसे

बनाये रखना गृहस्थ का कर्तव्य है। यह बहुत कुशलता से सीखना होता है। कई वर्षों तक यह प्रक्रिया चलती है। इस कारण से अधिक से अधिक समय घर में रहना आवश्यक माना गया है। जीवन के लिये उपयोगी सारी बातें घर में सीखने की भी इसी कारण से व्यवस्था की जाती रही है।

- ऐसा नहीं है कि कोई किसी कारण से घर से बाहर जाता ही नहीं था। हुनर सीखने के लिये, व्यापार करने के लिये, विद्याध्ययन के लिये, तीर्थयात्रा करने के लिये अनेक लोग घर से बाहर जाते थे। फिर भी जहां रहते थे घर के समान ही रहते थे। गुरुगृहवास करते थे तो गुरु के घर के जैसा ही व्यवहार करते थे। हुनर सीखने के लिये जिसके घर जाते थे उसके घर के जैसा व्यवहार करते थे। तीर्थयात्रा के लिये जाते थे तो घर की रीतिनीति का पूरा ध्यान रखते थे। व्यापार के लिये जाते थे तो भी घर का घरपना सम्हालकर रखते थे।
- व्यवहार का पूरा का पूरा ज्ञान घर में प्राप्त होता है। केवल शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को गुरुकुल में जाना होता है। सबके सब शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना चाहते ही हैं ऐसा तो होता नहीं है। कुछ जिज्ञासु लोग ही शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। उनके लिये व्यवस्था हो जाती है।
- बालिका को स्त्री, गृहिणी, पत्नी और माता बनाना है और बालक को पुरुष, पति, गृहस्थ और पिता बनाना है इसका ध्यान रखना कुटुम्ब में ही सम्भव होता है। इस दृष्टि से यौनशिक्षा, पतिपत्नी के सम्बन्ध की शिक्षा, शिशु संगोपन की शिक्षा, गर्भिणी की, शिशु की, रुग्ण की और वृद्धों की परिचर्या करने की शिक्षा, व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करने की शिक्षा, संकटों का सामना करने की शिक्षा, विपरीत परिस्थितियों में समता बनाये रखने की शिक्षा, कष्ट सहने की शिक्षा घर में ही मिलती है। यह सब पाठ्यक्रम बनाकर, विधिवत कक्षायें लगाकर, समयसारिणी बनाकर नहीं होता, सहजता से होता जाता है।

समाजव्यवस्था व्यक्ति केन्द्री बन गई है

इस प्रकार जीवन की अनेक बातें ऐसी हैं जो घर में सीखी जाती हैं। आज भी ऐसा हो सकता है। परन्तु आज स्थिति बहुत बदल गई है। विगत दोसौ वर्षों में हमारी समाजव्यवस्था छिन्नभिन्न हो गई है। अपनी व्यवस्था को छोड़कर हम उल्टी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। यह दिशा यदि अधिक सुख और अधिक संस्कारिता की ओर हमें ले जाती तो दिशा बदलने में भी कोई आपत्ति नहीं होती। परन्तु हमारे भौतिक और सांस्कृतिक संकट तो बढ़ रहे हैं। सामाजिक सुरक्षा नहीं है, आर्थिक निश्चिंतता नहीं है,पारिवारिक सम्बन्ध क्षीण हो रहे हैं। समाजव्यवस्था व्यक्तिकेन्द्रित बन गई है। हमने पूर्ण रूप से पाश्चात्य सामाजिक प्रतिमान अपना लिया है। कानून उसके अनुकूल बना लिये हैं। इसके चलते कुटुम्ब शिक्षा का केन्द्र नहीं रह गया है। कुटुम्ब में शिक्षा नहीं होने के कारण से शिक्षा की कुटुम्बबाह्य व्यवस्था बनाना हमारे लिये अनिवार्य बन गया है। अथवा यह भी कहना सही नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व ही विद्यालय शुरू हो गये थे, शिक्षा को बाजार में लाया गया था, क्रयविक्रय की स्थिति बन गई थी, सरकार ने शिक्षा की व्यवस्था का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया था जिसके परिणामस्वरूप घर की शिक्षा में व्यवधान आने लगा। लोग अपना घर का व्यवसाय छोड़ छोड़कर नौकरी करने लगे। कहीं यह प्रतिष्ठा के कारण से था, कहीं यह मजबूरी के कारण, परन्तु अर्थव्यवस्था के छिन्नभिन्न हो जाने के कारण नौकरी करने वालों की संख्या बढ़ती गई, नौकरी हेतु घर छोड़कर बाहर जाकर बसने वालों की संख्या भी बढ़ती गई।

पीढ़ीयाँ बदलती गईं वैसे वैसे यह सब हमारे लिये स्वाभाविक होता गया क्योंकि शिक्षाव्यवस्था में भी यह सब आ गया। नई पद्धति पाठ्यक्रमों के माध्यम से प्रतिष्ठित होती गई। कानून उसके अनुकूल बनने लगे। सरकारी नीतियाँ उसीके आधार पर बनने लगीं। हमने इस व्यवस्था को अपना लिया। अब हम उसे पाश्चात्य या अभारतीय नहीं कहते हैं, आधुनिक कहते हैं। हमें लगता है कि इसका कोई विकल्प नहीं है , न हो सकता है क्योंकि हमने हमारी अपनी व्यवस्थाओं का परिचय भी प्राप्त किया नहीं है। उल्टे कभी उल्लेख होता है तो उसे पिछड़े का लेबल लगा देते हैं। अब चारों ओर सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक क्षेत्र में समस्या ही समस्या है।

नई रचना बनानी होगी

इस कारण से कितना भी अपरिचित या असंभव लगता हो तो भी हमें पुनर्विचार तो करना ही होगा। पुनर्विचार का प्रारंभ अध्ययन से करना चाहिए। हमारी व्यवस्थायें कैसी थीं इसका परिचय प्राप्त करना प्रथम चरण होगा। अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व ही कुछ आस्था तो रखनी ही पड़ेगी। अध्ययन करते करते आस्था बढ़ेगी। हमें उस व्यवस्था की परिणामकारकता भी दिखाई देने लगेगी। अध्ययन के आधार पर वर्तमान समय के अनुकूल नई व्यवस्थाओं का विचार करना होगा। आर्थिक क्षेत्र बहुत अधिक मात्रा में ठीक करना होगा। पर्यावरण के संकट को ठीक से पहचान कर उसे भारतीय दृष्टि से दूर करने की योजना बनानी होगी। पर्यावरण के संकट के साथ हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का संकट कितना गहरा जुड़ा है यह भी समझना होगा। इन दोनों संकटों के कारण चिकित्सा उद्योग, औषध उद्योग, वकीलों का उद्योग और न्यायालयों की संख्या कितनी अधिक बढ़ गई है इसका गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। शिक्षा का बाजार कितना घातक हो गया है यह भी समझना होगा। इन सारी बातों को ध्यान में लेकर नई रचना बनानी होगी। थोड़ी दीर्घकालीन योजना बनानी होगी। दीर्घकालीन हो या त्वरित, कुटुम्बजीवन को केन्द्र में रखकर यह पुनर्विचार होने की आवश्यकता है।

इस कार्य में दो संस्थायें पहल कर सकती हैं। एक है विश्वविद्यालय और दूसरी है मन्दिर संस्था या धर्मसंस्था। भारतीय समाज और भारतीय शिक्षा हमेशा धर्मानुसारी रही हैं। धर्म ही सुरक्षा और विकास की गारण्टी दे सकता है। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमारी स्थिति भी ठीक होगी और विश्व को भी एक अच्छा प्रारूप मिल सकता है।

पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा आयोजित

एक साथ १०५१ ग्रंथों का लोकार्पण समारोह

निमंत्रण

आदरणीय श्री _____

सप्रेम नमस्कार ।

पुनरुत्थान विद्यापीठ विगत अठारह वर्षों से शिक्षा का शत प्रतिशत भारतीय प्रतिमान प्रस्थापित हो इस हेतु कार्य कर रहा है । इस अठारह वर्ष के कार्यकाल में विद्यापीठ ने अध्ययन,अनुसंधान,पाठ्यक्रम निर्माण, संदर्भ सामग्री निर्माण तथा शिक्षकों और अभिभावकों के प्रशिक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है ।

पुनरुत्थान विद्यापीठ एक ऐसी शिक्षा संस्था है जो भारतीय संस्कृति के आधार पर शिक्षा की पुनर्रचना करना चाहती है । पुनरुत्थान विद्यापीठ चाहता है कि भारतीय शिक्षा की प्रतिष्ठा विद्वतजनों और सामान्यजनों की कृति,वाणी,मन,बुद्धि और हृदय में हो इस हेतु विद्यापीठ ने १६ जुलाई २०१९ व्यासपूर्णिमा के दिन एक बड़ा प्रकल्प लिया जिसका नाम है **"ज्ञानसागर महाप्रकल्प"** एक साथ **१०५१** ग्रंथों के निर्माण एवं प्रकाशन का यह प्रकल्प है । यह प्रकल्प अब पूर्णता की ओर है । अब इसका लोकार्पण होने जा रहा है । इस कार्यक्रम की जानकारी इस प्रकार है ।

तिथि एवं दिनांक : चैत्र/वैशाख कृष्ण दशमी, युगाब्द ५१२५, दिनांक १५ अप्रैल २०२३
स्थान : सेनेट होल, गुजरात यूनिवर्सिटी, कर्णावती (अहमदाबाद)
समय : पूर्वाह्न १०.०० से १२:३०

जूनापीठाधीश्वर महामंडलेश्वर अनंतश्रीविभूषित परिव्राजकाचार्य श्री अवधेशानंदगिरि महाराज कार्यक्रम की अध्यक्षता करेंगे ।

ग्रंथों का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के परम पूजनीय सरसंघचालक माननीय मोहनजी भागवत के कर कमलों से होगा ।

राष्ट्र सेविका समिति की वंदनीय प्रमुख संचालिका माननीय शांताक्का विशेष अतिथि के रुप में उपस्थित रहेगी ।

आप इस कार्यक्रम में अवश्य उपस्थित रहें । आपको इस कार्यक्रम में उपस्थित रहने का हृदय पूर्वक निमंत्रण है ।

विनीत

विपुल रावल	**कार्यसमिति सदस्य**	**इन्दुमति काटदरे**
कार्यवाह, ज्ञानसागर महाप्रकल्प		**अध्यक्ष, ज्ञानसागर महाप्रकल्प**
संयोजक, पुनरुत्थान विद्यापीठ		**कुलपति, पुनरुत्थान विद्यापीठ**

विशेष : १ प्रकाशित ग्रंथों की प्रदर्शनी रहेगी । आदेश पत्र देकर ग्रंथो को क्रय भी कर पाएंगे ।

२ इस अवसर पर २० प्रतिशत वर्तन रहेगा । क्रय किए ग्रंथ आपको डाक अथवा कुरियर से भेजे जाएंगे । भेजने का व्यय विद्यापीठ करेगा ।

३ आपके आने की सूचना ३१ मार्च २०२३ तक देना है । आप के साथ कोई आ रहा है तो उनकी सूचना भी देना है ।

४ सूचना में नाम, स्थान, भ्रमणभाष क्रमांक अवश्य भेजे ।

५ कार्यक्रम के बाद भोजन की व्यवस्था रहेगी ।

६ आपकी आने की सूचना ८१६००२६९०० क्रमांक पर व्हाट्सअप पर दें।

नागालेंड की लोक-कथाएं

हत्यारा पेड़

एक बार दो बहनें जंगल से जलावन लाने के लिए घर से निकली। कंधे पर लोंकाई लटकाये वे दोनों बहनें जंगल पहुँच गयी। जलावन संग्रह करते समय अचानक छोटी बहन एक पेड़ को देखकर चहक उठी। उसने अपनी बड़ी बहन से कहा – दीदी, दीदी। देखो उस पेड़ पर कितना सुंदर फूल है।

बड़ी बहन ने भी पेड़ को देखा, फूल को देखा। वह बोली – मेरी प्यारी बहन, सचमुच अद्भुत पेड़ है और इसका फूल भी बहुत ही सुंदर है।

छोटी बहन ने अपनी दीदी से आग्रह कर बोली – दीदी, मेरी प्यारी दीदी। मुझे वह प्यारा फूल लाकर दो न दीदी। वह फूल बहुत ही प्यारा है दीदी ।

फिर छोटी बहन ने बड़ी बहन का हाथ पकड़कर फूल लाने के लिए विनय करने लगी। बड़ी बहन अपनी छोटी बहन को बहुत प्यार करती थी। अतएव बड़ी बहन उस पेड़ पर चढ़ी। पेड़ के ऊपर चढ़ती गयी। फूल पेड़ के ऊपरी सिरे पर दिखाई दे रहा था। बड़ी बहन पेड़ पर फूल के निकट पहुँच ही गयी। उसने एक फूल, तोड़ा और जोर से बोली – ओ मेरी प्यारी छोटी बहन, ये लो सुंदर फूल।

यह बोलकर उसने एक फूल नीचे फेंका। छोटी बहन दौड़कर फूल के निकट पहुँची और झट से फूल उठा लिया। परन्तु यह क्या, जितनी जल्दी से वह फूल उठाया थी, उतनी जल्दी से उसने फूल को फेंक दिया।

दीदी, यह फूल, तो मुर्गी के मल से गंदा हो गया है। दीदी, तुम दूसरा फूल तोड़ो और धीरे से नीचे गिराओ।

ठीक है – बड़ी बहन ने कहा। उसने दूसरा फूल तोड़कर धीरे से नीचे गिराई। पर यह क्या, वह फूल भी गंदा था।

छोटी बहन ने दीदी को आवाज दिया – इस फूल से सूअर के मूत्र की दुर्गंध आ रही है। बड़ी बहन एक-एक फूल, तोड़ती है और नीचे गिराती है। परन्तु छोटी बहन बोलती है यह भी गंदा है। इसमें, तो कुत्ते का मल लगा है, इसमें, तो बिल्ली ने पेशाब कर रखा है।

अचानक बड़ी बहन की आवाज छोटी बहन को सुनाई देती है – मेरी प्यारी बहन, पेड़ मेरे पैर को निगलता जा रहा है। ऐसा लगता है पेड़ धीरे-धीरे मेरे पूरे शरीर को निगल जाएगा। छोटी बहन रोने लगी। बोली – दीदी, ऐसा मत कहो दीदी।

ओ मेरी छोटी प्यारी बहन, तुम जलदी पेड़ के नीचे से भागो, तेज दौड़ते हुए, घर को पहुँचो। जब तक पेड़ निगलते हुए, मेरे मुख तक नहीं पहुँचता मैं जोर-जोर से बोलती रहूँगी।

छोटी बहन घर की ओर दौड़ते हुए, बोली – दीदी, पेड़ अभी कहाँ पहुँचा।

पेड़ घुटने तक पहुँच गया – बड़ी बहन की आवाज आई।

फिर थोड़ी देर बाद छोटी बहन ने रोती हुई बोली – पेड़ कहाँ पहुँच गया दीदी।

कमर को भी निगल गया – बड़ी बहन ने कहा। इस प्रकार छोटी बहन के पूछने पर बड़ी बहन क्रमशः बोलती रही – पेट तक पहुँच गया, छाती तक पहुँच गया, ठोढ़ी तक पहुँच गया।

फिर बड़ी बहन की आवाज आना बंद हो गई।

छोटी बहन चित्कार मार-मारकर रोने लगी। रोती-रोती ग्राम में पहुँची और जोर-जोर से बोलने लगी।

एक पेड़ ने दीदी को निगल लिया है, एक पेड़ ने दीदी को निगल लिया है। ग्रामवासी उसे साथ लेकर उस पेड़ के पास पहुँचे। नाम ले-लेकर सभी उस लड़की को पुकारने लगे। सभी रो रहे थे। गुस्से में आकार कुछ लोगों ने उस पेड़ को काट डाला। पेड़ से खून की धार बहनें लगी। लड़की को प्राप्त करने की लालसा में पेड़ को टुकड़े-टुकड़े करते रहे। परंतु, लड़की नहीं मिली। मिला लड़की के गले में लटकी खूबसूरत पत्थरों की माला हत्यारे पेड़ से।

मुण्ड के शिकार का प्रचलन

एक बार एक योद्धा अपने रास्ते से जा रहा था। थकान के कारण एक स्थान पर पेड़ की छाया में बैठ गया। उसने वहाँ पर चींटियों का आपस में युद्ध होते देखा।

दोनों ओर से चींटियाँ अपनी सेना के साथ एक स्थान पर युद्ध कर रही थी। वह योद्धा ध्यान से देखने लगा। उसे और भी आश्चर्य हुआ, जब परास्त और मारी हुए, चींटियों के सिर को विजयी चींटियाँ एक-एक कर खींचकर ले जा रही थी। योद्धा का दिमाग बहुत तेजी से सोच रहा था और कुछ सीख रहा था। वह ग्राम में वापस आया और चींटियों के युद्ध का प्रसंग बताया और अपना विचार रखा कि हमें भी अपने शत्रुओं के मुण्ड को काटकर ले आना चाहिए। उस समय एक ग्राम के निवासी दूसरे ग्राम के निवासियों तथा एक गोष्ठी दूसरे गोष्ठी के साथ जमीन और जंगल पर कब्जा के लिए आये दिन आपस में युद्ध करते थे। चींटियों के परस्पर संग्राम और परस्प मनुष्य के मुण्ड शिकार का प्रचलन हुआ। जितने मनुष्य के मुण्ड को काटकर लाया, घर के बाहर दरवाजे पर लटका रखता, वह उस समाज/गोष्ठी का सबसे वीर योद्धा माना जाता था।

भैंस का पैर

येइ और जेंगी दो नदियों के बीच ग्रामवासी अपने खेत में कार्य करने आते थे। एक दिन एक युवती पहले ही खेत पर आ गयी। जेंगी नदी से एक

मानव आत्मा प्रकट हुई और उस युवती को खेती के कार्य में सहायता करने लगा। युवती नहीं जानती कि वह कौन है। ग्रामवासी भी आए और एक नए आदमी को उस युवती के साथ कार्य करते हुए देखा। संध्या समय सभी घर को वापस जा रहे थे ।

ग्रामवासियों और वह युवती ने भी देखा वह व्यक्ति नदी के पीछे जाकर लुप्त हो गया। युवती और उस व्यक्ति में धीरे-धीरे प्यार हो गया। दोनों ने विवाह करने का निर्णय लिया। एक दिन दोनों ने विवाह कर लिया। वह व्यक्ति ने विवाह के अवसर पर ग्रामवासियों को एक जंगली भैंस भेंट किया।

ग्रामवासियों ने दोनों नदियों के बीच भैंस की बली दिया, फिर उसे उठाकर अपने ग्राम में ले जाने लगे। बाइन्स का पैर दूसरी बार ले जायेंगे। जब दूसरी बार वे आये, तो देखा भैंस का पैर नहीं रहा है। ग्रामवासियों ने भैंस के पैर के आकार का निर्माण कर परंपरागत पूजा किया। आज भी वह स्थान श्रद्धा-आस्था का स्थल है।

मैं एक अनाथ हूँ

एक ग्राम में एक समय की बात है। ग्राम के एक व्यक्ति ने धूमधाम से विवाह किया। उसे एक पुत्र प्राप्त हुआ। एक बार उसके घर के बाहर एक पक्षी ने एक घोंसला बनाया। घोंसला में उस पक्षी ने एक अंडा दिया। पक्षी के माता-पिता नए शिशु पक्षी का बहुत ध्यान रखते थे। एक दिन एक घटना हो गयी। एक बालक की गलती से शिशु पक्षी की माता मादा पक्षी की मृत्यु हो जाती है। नर पक्षी एक नया मादा पक्षी ले आता है। उसे घोंसला में लाकर रखता है। शिशु पक्षी की नयी माँ का व्यवहार अच्छा नहीं था। एक दिन उसने शिशु पक्षी को अपने पैर से चोट मार कर नीचे मैंदान में गिरा दिया। उस व्यक्ति की पत्नी इस घटना को देख रही थी। उसे बहुत दुख हुआ। जब उस महिला का पति आया, तो वह अपनी पत्नी को दुखित देखा।

उसने अपनी पत्नी से बोला – आज तुम बहुत दुखित दिखाई दे रही है।

पत्नी ने सौतेली मादा पक्षी का शिशु पक्षी के साथ गलत व्यवहार की बात बताई और अपने पति से बोली – पुरुष नर पक्षी से अलग नहीं है। पुरुष हो या नर पक्षी हो वे बच्चों की असली माता की मृत्यु के बाद उन बच्चों के प्रति लापरवाह रहते हैं।

हमारे परिवार में ऐसा नहीं होगा – अपनी पत्नी को समझाते हुए, उस व्यक्ति ने कहा।

दुर्भाग्यवश कुछ दिनों के बाद उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी, फिर उस व्यक्ति ने दूसरा विवाह कर लिया। नयी पत्नी का स्वभाव अच्छा नहीं था। उसने अपने पति से कहा – तुम्हारी पहली पत्नी के बेटा के साथ मैं इस घर में नहीं रह सकती हूँ। तुम अपने उस बेटा को घर से बाहर निकाल दो। वह व्यक्ति नयी पत्नी को भी छोड़ना नहीं चाहता था और पहली पत्नी से उत्पन्न बेटा को भी अपने ही साथ रखना चाहता था। उसने अपने बेटा की सौतेली माता से छुपाकर रखने का निर्णय लिया। अपने बेटा को अपने बिछावन के नीचे छुपा लिया। उसे छुपाकर खाना खिलाता रहता था। एक दिन सब्जी में तीखी मिर्च के कारण बेटे को बहुत परेशानी हुई। उसकी आवाज से सौतेली माँ के सामने छुपा हुआ बेटा सामने आ गया। वह बहुत नाराज हुई और अपने पति से बोली – तुम मुझे अपने साथ इस घर में रखना चाहते हो, तो अभी अपने इस बेटे को घर से बाहर करो। इसे जान से मार डालो, फिर इसका मरा हुआ दिल लाकर मुझे दिखाओ।

पिता बेटा को मारना नहीं चाहता था। वह अपने बेटे को लेकर जंगल के अंदर पहुँचा। बेटे को एक पेड़ के ऊपर बैठा दिया। बेटे को बहुत सारा केला दिया और एक बड़ा सा चाकू भी दिया। बेटा को पेड़ पर छोड़कर पिता वापस घर को लौट गया। रास्ते में एक बकरे को मारकर उसका दिल निकाला। घर जाकर उस दिल को अपनी नयी पत्नी को दे दिया। पत्नी खुश हो गयी।

उधर पेड़ पर बैठा वह बालक उदास था। अचानक एक बाघ पेड़ पर चढ़ते हुए, दिखाई दिया। बालक डर गया। पर साहस से वह एक-एक केला बाघ की ओर फेंकता गया। बाघ प्रेम से खाता गया। अब केला समाप्त हो चुका था।

बालक को एक युक्ति ध्यान में आई।

उसने बाघ को प्रेम से बोला – आप इतने कष्ट सहकर पेड़ पर क्यों चढ़कर मुझे खाएँगे। मैं ही आपके मुख में आ जाता हूँ। आप अपना मुख जितना बड़ा करके खोल सकते हैं खोल ले। मैं उछलकर आपके मुख में आ जाऊँगा।

बाघ को उसकी बात पसंद आई। उसने अपना बड़ा सा मुख खोलता गया, खोलता गया। बालक ने बड़े चाकू को शेर के मुख में इतनी तेजी से फेंका की वह चाकू बाघ के गले को चीरता हुआ बाघ के पेट को गहरा चोट पहुँचाया। बाघ तुरतं मर कर नीचे गिर गया।

बालक जंगल से निकलकर दूसरे ग्राम में पहुँच गया। वह उस ग्राम में प्रेम से रहते हुए, परिश्रम करने लगा। एक आदर्श बालक के समान उसके कार्य से सभी खुश रहने लगे। बड़े होने पर उसे ग्राम का ग्राम बूढ़ा बना दिया गया। आसपास के ग्राम तक एक आदर्श ग्राम बूढ़ा के रूप में प्रसिद्धि थी।

एक दिन वह आसपास के ग्रामवासियों को भोज पर निमंत्रण दिया। उसने अपने पिता को भी निमंत्रण भेजा। उसके पिता भोज के दिन आये। उसका पिता अपने बेटा को पहचान नहीं पाये।

फिर ग्राम बूढ़ा ने सभी के सामने अपनी आप-बीती बताई। अब उसका पिता समझ चुका था कि यह ग्राम बूढ़ा मेरा ही बेटा है। वह उठ कर अपने बेटे के निकट आया। जैसे ही वह अपने बेटे को गला लगाना चाहा, अचानक एक घटना घट गयी। तीव्र गति से एक पक्षी अचानक आया और पिता के जीभ को ऐसा काटा कि वह जीभ कटकर नीचे गिर पड़ी। पिता दर्द से तड़पता हुआ अपने बेटे के पैरों पर गिरकर मर गया।

बेटे के मुख से आवाज निकली – मैं एक अनाथ हूँ।

(क्रमशः)

पुनरुत्थान कार्य अने विचार संदेश
पौष, शक संवत् १९४४, जनवरी २०२३

Publish on 15th Every Month
RNI No. GUJHIN/2009/30610 GAMC-1764/2022-2024
ISSUED BY SSP VAILID UP TO 31-12-2024
PERMITTED TO POST AT AHD. PSO ON 15th EVERY MONTH

तत्त्वज्ञान

एकोऽहम् बहुस्याम् प्रजायेय ।

मै एक हूँ,
विस्तरित होकर बहुत हो जाऊँ ।

भारतीय जीवन विचार का यह मूल सिद्धांत है । इसे मूल रूप में समझ कर उसका स्वीकार कर, बुद्धि के, व्यवस्था के और व्यवहार के हर क्षेत्र में लागू किया जाने से भारत भारत बनता है ।

एकोऽहम् ।

मैं एक हूँ । यह एक कौन है ?

यह एक आत्मतत्त्व है । इसने अपना नाम आत्मतत्त्व नहीं बनाया है परंतु हमारी बुद्धि नामरूपात्मक जगत में ही व्यवहार कर सकती है इसलीये हमारी बुद्धि ने इसे नाम दिया है आत्मतत्त्व । तत्त्व के रूप में इसे न रूप है न गुण है न नाम है । यह एक ही है ।

आत्मतत्त्व ने इच्छा की कि मैं अनेक हो जाऊँ । इस इच्छा को कामसंकल्प कहा है । यह इच्छा क्यों हुई इसका उत्तर कहीं नहीं दिया गया है । विस्मय की बात यह है कि समस्त सृष्टि में यह कामसंकल्प मन बनकर अनुस्यूत है । यह जगत की उत्पत्ति का कारण है । यह ऐसा कारण है जिसका कोई कारण नहीं । यह आदि कारण है, मूल कारण है ।

एकोऽहम् – मै एक हूँ । यह मैं कोन है ?

यह मैं स्वयं आत्मतत्त्व हूँ । इच्छा अर्थात् कामसंकल्प के साथ में जुडा है, समस्त सृष्टि में यह मैं कर्ता और कर्तृत्व बनकर अनुस्यूत हुआ है ।

आत्मतत्त्व विस्तरित होना चाहता है । विस्तरित होने की प्रक्रिया कामसंकल्प से शुरू होती है और विस्तार होता ही रहता है, होता ही रहता है ।

विस्तार और विस्तार की इच्छा प्रजनन बनकर सृष्टि में अनुस्यूत होती है । यह एक आत्मतत्त्व विस्तरित होकर विश्वरूप बनता है । सृष्टि परमात्मा का विश्वरूप है ।

अतः जीवन, जगत और आत्मतत्त्व भिन्न नहीं, एक ही है । यह भारत है ।

कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग

पु. सं. के पाठकों को आवाहन है कि आप इसके साथ कृतिरूप में जुड़ें । पुनरुत्थान विद्यापीठ शिक्षाक्षेत्र में एक आंदोलन है और सर्वप्रकार के लोग इसमें जुड सकते हैं ।

जो भी इससे जुडना चाहते हैं उनके लिये अप्रैल २०२३ में एक दिन के कार्यकर्ता अभ्यासवर्ग का आयोजन किया गया है ।

दिनांक है १७ अप्रैल २०२३ । समय है प्रातः ९–०० से सायं ६–०० तक । स्थान है डॉ. हेडगेवार भवन, कांकरिया, अहमदाबाद, गुजरात । शुल्क नहीं है । भोजन निवास की व्यवस्था रहेगी । जो भी आना चाहते हैं वे मो. ८४२५८४१४०८ क्रमांक पर संपर्क कर सहभागिता पत्रक प्राप्त करें और उसे भरकर दि. २८ फरवरी २०२३ तक उसी क्रमांक पर वोट्स एप से भेज दें ।

सहभागिता पत्रक के बिना प्रवेश नहीं है ।

अंक प्रतिमास दिनांक १५ को प्रेषित किया जाता है । दिनांक २५ तक न मिलने पर सूचित करें । शेष बचा होने की स्थिति में नया अंक प्रेषित किया जायेगा ।

संरक्षक
डा. भानुभाई कीकाणी

प्रधान सम्पादक
इन्दुमति काटदरे (०९४२८८२६७३१)

व्यवस्थापक
विपुल रावल (९९७९०९९१४२)
व्यवस्थापकीय एवं सम्पादकीय पत्रव्यवहार विपुल रावल के नामसे करें । लिफाफे पर 'पुनरुत्थान सन्देश' अवश्य लिखें ।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	३०.०० रु.
पंचवार्षिक	१२५.०० रु.
पन्द्रह वार्षिक	३०० रु.
शुभेच्छक	१००० रु.
एक अंक	३.०० रु.

यह पत्रिका आपको उपयोगी और पठनीय लगती है तो सदस्यता शुल्क भेजने और भिजवाने की कृपा करें । शुल्क धनादेश अथवा चेक से अथवा खाते मे जमा करवा शकते है । खाता नंबर कार्यलय में से प्राप्त किजीये ।

प्रकाशक : पुनरुत्थान ट्रस्ट
चित्रकार : अजित वाघेला
मुद्रक : साधना मुद्रणालय ट्रस्ट

प्रेषक :
पुनरुत्थान ट्रस्ट
'ज्ञानम्' ९ बी, आनन्दपार्क, बलियाकाका मार्ग,
जूना ढोर बजार, कांकरिया, अहमदाबाद–३८० ०२८
दूरभाष : ०७९–२५३२२६५५
ई मेल : indumatikatdare@gmail.com
वेबसाईट : www.punarutthan.org

पुस्तप्रेष | मुद्रित सामग्री

प्रति,

Printed and Published by **INDUMATI KATDARE** on behalf of **PUNARUTTHAN TRUST** and Printed at **Sadhana Mudranalaya Trust,** 55/14 City Mill Compound, Outside Raipur Darwaja, Ahmedabad-380 022 and published from 9/B, Anand Park, Baliyakaka Marg, Old Dhor Bajar, Kankaria, Ahmedabad-380 028
Editor : **INDUMATI KATDARE**